

ऐतिहासिक किसान आन्दोलन...

पेज पांच का शेष

है। 1991 में शुरू हुए 'उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण' के दौर का एक पहलू ये भी था, कि सरकार ने अपनी वह जिम्मेदारी छोड़ दी, जिसके तहत वह पूंजीपतियों की सारी जमात के समग्र अथवा औसत हित-साधन के लिए काम करती थी। पूंजी, अपने से छोटी पूंजी का गला घोटकर ही मोटाती है। फिर भी इस खूनी खेल में, मरती-जाती छोटी पूंजी को, किसी तरह जिंदा रखने के लिए, सरकार, एक निष्पक्ष रेफरी की भूमिका अदा करती थी। 1991 के बाद, उसने वह सिटी बजानी भी बंद कर दी और खुला खेल फर्रुखाबादी शुरू हुआ। जो भी तय होगा, वो बाज़ार के नियम से ही तय करेगा।

अब उसके बीच सरकार भी क्यों पड़े। कृषि बाज़ार को नियंत्रित रखने में, सरकार, सबसे ज्यादा दखल देती थी, क्योंकि बगैर जूते के तो कितने ही लोग सारी जिन्दगी निकाल देते हैं, लेकिन बगैर रोटी दो दिन भी नहीं कटते। स्वाभाविक है, सबसे ज्यादा कोहराम खेती-किसानी में ही मचना था।

सरकार पूरी तरह बीच में से हट गई, ऐसी बात नहीं। 1991 के बाद सरकार ने पूंजी के, सबसे प्रभुत्वकारी भाग, कॉर्पोरेट वित्तीय पूंजी का ही हित साधने का फैसला कर लिया। आनुपातिक रूप से छोटी पूंजी को सांसें चलाए रखना जिससे बेरोजगारी और कंगाली सर्वव्यापी और विकराल ना बन जाए, इस मशक्कत को सरकार ने छोड़ दिया, क्योंकि यस काम अब लगभग असंभव हो गया था। दादागिरी करना, वित्तीय पूंजी का स्वभाव है। स्ट्रेटबाज वित्तीय पूंजी के पहाड़ पर बैठे विशालकाय अडानी-अम्बानियों के मुंह से, अब दिखावे की नकेल भी उतार कर रख दी गई। समूचे देश में, कहीं भी खुलकर शिकार की छूट मिलते ही, सारा खेल बदल गया। पूंजीवाद के एक निश्चित 'विकास' क्रम में ये शुरुआत कांग्रेस ने ही की थी, लेकिन इस नंगी लूट-मार को निर्बाध चलने देने के लिए, बाज़ार के प्रस्थापित नियम-कानूनों को जिस तरह पैरों तले कुचलना था,

कानूनविहीनता को ही कानून बताना था, उसे वह नहीं कर पाई। इसीलिए, कांग्रेस अपने ही आकांक्षामार्गों की नज़रों में गिर गई। अब वे उसकी तरफ देखते भी नहीं। इस काम को करने की प्रतिभा मोदी जी जैसी किसी के पास नहीं नज़र आ रही। इसीलिए कॉर्पोरेट मीडिया 2047 तक उन्हें ही प्रधानमंत्री देखा चाहता है। कॉर्पोरेट लुटेरे असलियत में जो चाहते हैं, उस अजेंडे को लागू कराने की हिम्मत तो मोदी सरकार भी अपने दूसरे काल में ही जुटा पाई है। 3 कृषि कानून, बने तो सितम्बर 2020 को थे, लेकिन कृषि बाज़ार को नियंत्रित करने के लिए, विशेष रेल पटरियों से जुड़े अडानी के विशालकाय साइलो 2015 में ही बनने शुरू हो गए थे। लाखों करोड़ रुपये उसमें लग चुके हैं। क्या सरकार, कृषि बाज़ार के कारपोरेटीकरण के रास्ते से पीछे हट सकती है? उत्तर- नहीं। क्या सरकारी अनाज मंडियों के रहते, निजी मंडियां चल सकती हैं? नहीं। कृषि बिल रद्द करने वाला कानून पास करा कर भी, क्या मोदी सरकार, कृषि बाज़ार में कॉर्पोरेट का प्रवेश रोकती नज़र आती है? नहीं। कोई किसान खुद को कितना भी बड़ा चौधरी क्यों ना समझे, क्या वह अडानी-अम्बानी से प्रतियोगिता कर सकता है? नहीं। क्या मोदी सरकार सही में हारी है और किसान सचमुच जीते हैं? नहीं। क्या मोदी सरकार, निर्धारित न्यूनतम मूल्य पर सारी उपज की सरकारी उपज की खरीदी करने की दिशा में एक कदम भी बढ़ी है? नहीं। क्या उस वक़्त आन्दोलन वापस लेना एक सही निर्णय था, जब सरकार के होश फ़ाखा थे और किसानों की प्रतिष्ठा चरम पर थी? नहीं।

किसानों के अपने घरों की तरफ प्रस्थान करते ही, मोदी सरकार की भाषा बदल गई। ना सिर्फ़ एमएसपी कमिटी के गठन पर संयुक्त किसान मोर्चे को अनदेखा किया, बल्कि जो काम करने आसान थे, जैसे शहीद किसानों को मुआवज़ा देना, किसानों के खिलाफ़ दर्ज़ हुए मुकदमे वापस लेना, लखीमपुर खीरी हत्याकांड के सूत्रधार मंत्री को बरखास्त करना आदि पर भी आगे बढ़ने को तैयार नहीं। मतलब, वह किसानों को गंभीरता से लेती भी नहीं दिखना चाहती। किसानों की यह जीत उल्लेखनीय है लेकिन आन्दोलन के पहले चरण की, सीमित जीत ही है। इसे बचाए रखने के लिए भी किसानों को आगे लगातार लड़ते रहना होगा।

पहले भी हम जीते थे, आगे भी हम जीतेंगे

देश की मौजूदा स्थिति ये है कि आज, समाज का कोई भी हिस्सा अपनी सीमित लड़ाई भी, सही माने में नहीं जीत सकता। 'किसान' एक जटिल समूह है। इसमें वे किसान भी शामिल हैं जो बड़े बड़े फार्मों के मालिक हैं और जो खुद खेती नहीं करते। साथ ही वे मेहनतकश किसानों के बड़े तबके और खेत मजदूरों का ना सिर्फ़ शोषण करते हैं, बल्कि जातिगत व पित्रसात्मक जुल्म करना भी अपना अधिकार समझते हैं। कॉर्पोरेट भेड़िया उन्हें भी उनकी औकात बता देगा, वे जानते हैं। वे अकेले, कोई लड़ाई नहीं लड़ सकते, इसीलिए सारे 'अन्नदाताओं' को एक करने में लगे हैं। पंजाब में किसान आन्दोलन ने जन्म लिया और देश भर में फैला। लेकिन, उसी पंजाब में आन्दोलन के समाप्त होने से पहले ही, खेत मजदूरों को निश्चित मजदूरी देने की बजाए, उन्हें डरा-धमकाकर, धौंस दिखाकर बलपूर्वक काम लेने की कई घटनाएँ प्रकाश में आईं। अधिकतर किसान (86ल), इतनी छोटी ज़मीन के मालिक हैं कि वे उसमें जिंदा नहीं रह सकते। इन ज़मीनों पर भी इन्हीं धनी किसानों की गिद्ध दृष्टि गढ़ी रहती है।

किसान एकता, कामयाबी की ज़रूरी शर्त है। ये एकता, लेकिन, बगैर किसी सिद्धांत के नहीं हो सकती। एकीकृत समाज में, आपस में भी जो शोषण-दमन है, उसे बिलकुल नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता। वर्ना ये एकता, शोषण को ढकने का एक नया औज़ार बन जाएगी। एक 'थंब रूल' बनाना होगा। हर स्तर पर हो रहे शोषण- दमन में, सारे एकीकृत समाज को, आर्थिक हो या जातिगत, दोनों स्तरों पर, शोषित-दमित समुदाय के साथ और शोषक-उत्पीड़क के खिलाफ़, डटकर और खुलकर खड़ा होना होगा। इसे एक मूलभूत सिद्धांत बनाना होगा जिसका कोई भी उल्लंघन, उल्लंघनकर्ता को संयुक्त मोर्चे से दूर कर देगा। इसके बगैर लम्बी, निर्णायक लड़ाई, सही दिशा में, नहीं लड़ी जा सकती। धनी किसान को अगर 'चौधरी' की जगह कॉर्पोरेट का 'मुंशी' बन जाने का डर सता रहा है, जो कि एक हकीकत है, तो उसे अपनी सभी किस्म की हेंकडियों, पेंतरेबाजियों से बाज़ आना होगा। अगर वह ऐसा नहीं करता, तो संयुक्त किसान मोर्चे को खुद उसे बाहर को रास्ता दिखाना होगा। गेहूँ से भूसा अलग होना बहुत ज़रूरी होता है, वर्ना वह गेहूँ को भी सड़ा देगा। अलग होते ही इन 'चौधरियों' को अपनी हेंसियत और मोदी सरकार की असलियत, दोनों समझ आ जाएंगी। कॉर्पोरेट का डर दिखाकर भी, अपने से छोटे का खून चूसने की इज़ाज़त नहीं दी जा सकती। आधारभूत नियम-शोषित के साथ, शोषक के खिलाफ़; कोई समझौता नहीं; चाहे मोर्चे के अन्दर की बात हो चाहे बाहर की।

भले सारे किसान एक हो जाएँ, कितने भी दिन सीमाओं पर ताल ठोककर क्यों ना बैठे रहें, वे अपनी मुक्ति की लड़ाई नहीं जीत सकते। पूंजीवाद विरोधी समाजवादी क्रांति के, फैसलाकुन मुक्ति संघर्ष की रहनुमाई की जिम्मेदारी, इतिहास ने सर्वहारा वर्ग को दी है। वही वर्ग है जो अपनी नैसर्गिक गति से बढ़ता जा रहा है, अनुशासित होता जा रहा है। जिसके पास खोने को उनकी जंजीरों के सिवा कुछ नहीं बचा। बहुत सुखद हकीकत है कि किसान भी इस सच्चाई को स्वीकार करते जा रहे हैं। किसान महापंचायतें अपना स्वरूप बदलकर 'मजदूर किसान महापंचायतों' में रूपांतरित होती जा रही हैं। यही है आगे का रास्ता, मुक्ति का सही रास्ता।

निर्णायक संघर्ष की ओर ...

पेज दो का शेष

तैयार होना या उस मुख्य कड़ी को जोड़ पाना अभी बाकी है, जो एक स्प्रिंग बोर्ड के माफिक कल फिर से होने वाली ठीक ऐसी ही लड़ाइयों को "निर्णायक लड़ाई व संघर्ष" में तब्दील कर देगी। फिर भी इतना तो तय है कि पर्चा यह बता रहा है कि मासा सेंट्रल ट्रेड यूनियनों व उनके महासंघों की जगह लेना चाहता है और उसका टैग लाइन "मजदूर वर्ग के निरंतर, जुझारू और निर्णायक संघर्ष" है।

यहां कोई सिरफ़ारा ही कह सकता है कि "मजदूर वर्ग के एक बड़े हिस्से का इसे जब समर्थन ही नहीं है, तो आह्वान करने से क्या फर्क होता है?" हम बड़ी विनम्रता से यह कहना चाहते हैं - "जी हाँ, इससे फर्क पड़ता है।" यह वही फर्क है जो कुछ न करने से बेहतर कुछ करने की कोशिश में है; जो अच्छे भविष्य के सपने देखने और जो मौजूद है उसे ही अपना भाग्य मान कर यथास्थिति को स्वीकार कर लेने में है; जो घोर ना-उम्मीदी में भी उम्मीद से भरी कोशिश करने और चुपचाप चादर ओढ़ सोते रहने में है। कुल मिलाकर यह कहना बेहतर है कि, यहां वही फर्क है "जो एक मरे हुए व्यक्ति और जिंदा व्यक्ति में है।"

मासा के घटक संगठनों में, इसके इतिहास में मौजूद कुछ अपवादपूर्ण स्थितियों को छोड़कर, वैसे संगठन हैं जो सिर्फ़ मजदूर वर्ग की अगुआ क्रांतिकारी ताकतों का प्रतिनिधित्व ही नहीं करते हैं, अपितु मजदूर वर्ग के साथ रचने-बसने वाले संगठन हैं और उनकी सीधी लड़ाइयों में शामिल और भागीदार हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि अगुआ होने के अतिरिक्त ये मजदूर वर्ग की कुल वास्तविक शक्ति के एक हिस्से का भी वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हैं। इस तरह मासा मजदूर वर्ग का एक वास्तविक मंच है, भले ही यह अभी मजदूर वर्ग के एक हिस्से को ही समेटने में सक्षम है और उसका प्रतिनिधित्व करता है, हालांकि इसमें देश के अन्य क्षेत्रों से और नये संगठन इसके घटक के रूप में जुड़ने अभी बाकी हैं। लेकिन आज भी जो इसके घटक संगठन हैं, उनमें से अधिकांश के बारे में हम अपने प्रत्यक्ष अनुभव और ज्ञान के आधार पर यह दावे के साथ कह सकते हैं कि वे सरजमीं पर चल रहे उस वास्तविक वर्ग-संघर्ष के अगुआ तत्व व शक्ति हैं जो मजदूर वर्ग के एक हिस्से द्वारा पूंजीपति वर्ग के एक हिस्से के विरुद्ध चलाये जा रहे हैं, और कल निर्णायक दौर में पूरे मजदूर वर्ग के द्वारा पूरे पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध चलाये जाने वाले देशव्यापी वर्ग-संघर्ष का रूप लेंगे, जिसे ही आर-पार की और निर्णायक लड़ाई कहा जाएगा। जाहिर है, इसके अतिरिक्त मजदूर वर्ग के "निर्णायक संघर्ष" का और कोई मतलब नहीं हो सकता है।

हम यहां अपनी तरफ से कोई बात नहीं रख रहे हैं। हम बस मासा के बैनर और पर्चे के मस्तूल शिखर पर अंकित उसके ही केंद्रीय नारे व आह्वान को वास्तविक आंदोलन की ज़रूरतों के मद्देनजर तार्किक परिणति तक पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं, जो हो सकता है कि घटक ठोस वस्तुगत हालातों के शिलाखंड से बुरी तरह टकराते हों, और इसलिए इस लिहाज से गलत भी हों। लेकिन तार्किक वैज्ञानिक पद्धति की तो यही मांग है कि वास्तविक मजदूर आंदोलन की ज़रूरतों को नज़रअंदाज़ नहीं किया जाए।

इतिहास इस बात का गवाह है कि बहुत तरह के मतावलंबी प्रतिनिधियों (जैसे कि पुधोवादी, लासालपंथी, बकुनिनपंथी, व्लांकीपंथी और निस्संदेह मार्क्सवादी, आदि) से बने मजदूरों के प्रथम इंटरनेशनल की सबसे बड़ी खासियत ही यही थी कि भिन्न-भिन्न

मतों के अनुयायियों की उपस्थिति के बावजूद प्रथम इंटरनेशनल कार्यवाहियों और गतिविधियों के मामले में केंद्रीकरण के सिद्धांत का ही अनुसरण करने वाला संगठन था, क्योंकि यही मजदूर आंदोलन की वास्तविक ज़रूरत थी। इसकी सबसे बड़ी मिसाल हमें पेरिस के वीर और साहसी कम्प्यूनाडों की कार्यवाहियों में दिखती है, जो मुख्यतः केंद्रीकृत, एकमुश्तरका और सर्वसत्तावादी थीं। हम देखते हैं कि जहां तक मतों का संबंध है कम्प्यूनाड व्लांकीवादी तथा अन्य कई दूसरे तरह के मतों के अनुयायी थे (कुछ मार्क्स-एंगेल्स के अनुयायी भी थे), लेकिन जब उनके वास्तविक क्रांतिकारी व्यवहार के क्षेत्र का अवलोकन करते हैं तो वे मुख्यतः मार्क्स के विचारों से निर्देशित होते पाये गये। जहां कहीं भी उनके व्यवहार का मार्क्स-एंगेल्स के विचारों व सलाहों से विचलन हुआ या उनको दरकिनारा किया गया, उनको करारी पराजय और हार का मुंह देखना पड़ा। ऐसा इसलिए नहीं हुआ कि मार्क्स के बाह्य व्यक्तित्व में कुछ खास चीज थी जो अन्यो में नहीं थी। बल्कि ये इसलिए हुआ क्योंकि मार्क्स के विचार मजदूर आंदोलन की ठोस एवं वास्तविक ज़रूरतों को प्रतिबिंबित करते थे, जबकि अन्यो के विचार उन ज़रूरतों से अलग कुछ सिद्धांतकारों की पूर्वकल्पित इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करते थे।

मार्क्स-एंगेल्स के विज्ञानसम्मत विचारों और अन्य सिद्धांतकारों के मतों के बीच यही मुख्य अंतर था या है, और यही अंतर मार्क्स की लेखनी में मौजूद उस कलात्मक दक्षता का भी प्रमाण था या है, जिसकी बदौलत मार्क्स और एंगेल्स, अपने मतावलंबियों की संख्या के मामले में अल्पमत में होते हुए भी, अपने विज्ञानसम्मत ज्ञान, बुद्धि और व्यवहार के बल पर प्रथम इंटरनेशनल के एक-एक महत्वपूर्ण दस्तावेज के जनक बने। अंततः इसके जरिए वे प्रथम इंटरनेशनल पर अपनी हर तरह की अमित छाप अंकित करने में भी सफल रहे, वो भी कुछ इस तरह कि उनके विरोधी भी अंततोगत्वा व्यवहार में ठीक वही सब करने के लिए मजबूर हुए जिसके लिए वे मार्क्स का हमेशा विरोध करते थे। वास्तविक मजदूर आंदोलन की ज़रूरतों को अपने सिद्धांत में व्यक्त करने और मनगढ़ंत बातों को वास्तविक आंदोलन की ज़रूरतों

पर थोपने के बीच का यह फर्क ही है जो मार्क्स-एंगेल्स को अपने तमाम समकालीनों की तुलना में अजेय और अमर बना दिया।

हम अगर मासा में प्रथम इंटरनेशनल की छवि देखना चाहें, तो कुछ असमानताओं को नोट करते हुए ऐसा कर सकते हैं। हम पाते हैं कि कम्प्युनिज्म की ही अलग-अलग तरह की वो वैध क्रांतिकारी धाराएं इसमें शामिल हैं जो अपनी वैचारिक व राजनैतिक परवरिश में एक दूसरे से काफी भिन्न हैं। लेकिन जो चीज सभी में साझा है, वह यह है कि वे सभी मजदूर वर्ग की वास्तविक शक्तियां हैं जिसकी जड़ें मजदूर वर्ग और इसकी लड़ाइयों व संघर्षों में गहरे पैठी हैं। और इसलिए प्रथम इंटरनेशनल की तरह इनकी शक्तियों का भी केंद्रीकरण संभव है और मासा को मजदूर वर्ग की "निर्णायक लड़ाई" का साझा मंच बनाने में कोई खास दिक्कत नहीं है। इधर हाल की मासा कार्यवाहियों को देखें, तो मजदूर आंदोलन के क्रांतिकारी उत्थान की इसकी बातों और व्यवहार में कुछ खाई, या अन्य कमियां और कमजोरियां हैं, लेकिन ये तय है कि ये सभी गंभीर शक्तियां हैं और आंदोलन को महज क्रांतिकारी गप्पें हांकने का माध्यम नहीं मानती हैं। इसलिए "मासा के बढ़ते कदम" का आने वाले समय में भारत के मजदूर वर्ग पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ने वाला है। इसे मानने में "यथार्थ" को कोई अतिशयोक्ति दिखाई नहीं देती है।

ज़रूरी है कि इस मंच को अन्य सभी तरीके से मजबूत व समृद्ध किया जाए ताकि यह मजदूर आंदोलन की वास्तविक ज़रूरतों को व्यक्त करने का माध्यम बन सके। हमारी नज़र में, यह अत्यंत महत्व की बात है कि मासा ने अपनी शक्ति से ज्यादा शक्ति लगाकर "श्रम कोड के विरोध" की केंद्रीय मांग से लेकर अन्य दर्जनों महत्वपूर्ण मांगों, जिनमें निर्माण क्षेत्र के असंगठित मजदूरों से लेकर ग्रामीण सर्वहाराओं व मजदूरों की सभी जायज दूरगामी तथा फौरी मांग भी शामिल है, के समर्थन में अपना झंडा और नारा पूरे देश में बुलंद किया हुआ है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसका आने वाले दिनों में, जब क्रांतिकारी परिस्थिति वास्तव में प्रस्फुटित होगी, मजदूर आंदोलनों को क्रांतिकारी कार्यवाही में तब्दील करने में इसका अवश्यभावी तौर से बहुत अधिक असर होगा।

